UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : History
Research Link - 165, Vol - XVI (10), December - 2017, Page No. 121-123
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

# उपनिषद कालीन धार्मिक विचारधारा का विकास

***प्रस्तुत शोधपत्र में उपनिषद कालीन धार्मिक विचारधारा के विकास का अध्ययन किया गया है। धर्म के क्षेत्र में इस युग में पूर्ववर्ती युग से परिवर्तन स्पष्ट रुप से दिखाई देने लगते हैं। पूर्व कालीन धार्मिक धारणाओं में देव-पूजा, प्रकृति-पूजा का महत्व था, परन्तु इस युग में विभिन्न देवताओं के स्थान पर एकेश्वरवादी धारणा विकसित हो रही थी। उपनिषदों का प्रमुख प्रतिवाद विषय 'मोक्ष' ही था। परन्तु इसका आशय यह नहीं था कि तद्समय में धर्म के अन्य अवयवों की उपेक्षा का भाव रहा, उपनिषदों में धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों को भी उतना ही महत्व दिया गया। उपनिषों में इस बात पर सर्वाधिक बल दिया गया है कि मनुष्य कैसे सामाजिक जीवन में रहते हुए 'मोक्ष' की प्राप्ति कर सकता है। 'प्रेयस' में रहते हुए मनुष्य निःश्रेयस की प्राप्ति कैसे करता है, यही उपनिषदों की संस्कृति का मूल 'लक्ष्य' है। वस्तुतः इस युग में धर्म में वैचारिक तत्व ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण था, जो मानव मात्र के लिए था।***

**डॉ.मनोज कुमार तिवारी**

सभी उपनिषद व्यवस्थित चिन्तन से कहीं अधिक आध्यात्मिक आलोक की साधन है। ये हमारे समक्ष अमूर्त दार्शनिक पदार्थो का संसार नहीं; अपितु अमूल्य और अनेक प्रकार के आत्मिक अनुभव का संसार उदघाटित करती हैं। इनके सत्यों की पुष्टि केवल तर्कबुद्धि से नहीं, बल्कि निजी अनुभव से होती हैं। इनका लक्ष्य काल्पनिक नहीं व्यवहारिक है। ज्ञान मुक्ति का साधन है। एक विशिष्ट जीवन प्रणाली द्वारा ज्ञान का अनुसरण ही दर्शन, ब्रह्मविद्या है।[1] उपरोक्त कथन के आलोक में यह कहा जा सकता है कि उपनिषद युगीन संस्कृति में 'धर्म' सर्वाधिक महत्वपूर्ण और नियामक तत्व था और तत्समय में यह कोरी विचारधारा मात्र नहीं था, अपितु जीवन में अनुभवों और सामाजिक आचार–विचार के प्रभावों से भी उत्पन्न हुआ। 'धर्म' सदा जीवन को नियमित करने का ही कार्य करता है और वो भी संस्कृति विशेष के सन्दर्भो में। उपनिषद युगीन धार्मिक स्थिति लगभग इसी परम्परा में है, जो अपने पूर्ववर्ती धार्मिक विचारों का परिष्कृत विस्तार थी, जिसने तत्समय की समाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सबसे बढ़कर मानसिक स्थिति की आवश्यकता के अनुरूप अपना विकास किया।

ऋग्वैदिक काल के अन्त तक जिस एकेश्वरवादी विचारधारा का उदय हुआ, वह उपनिषदों के काल में पूर्णता को प्राप्त हुई। पुरोहित के बढ़ते प्रभाव, यज्ञीय कर्मकाण्ड तथा अनुष्ठानों के विरूद्ध इस युग में सबल प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई परिणामस्वरूप तप, त्याग, सन्यास आदि पर विशेष बल दिया जाने लगा। उपनिषदों में स्पष्टतः यज्ञों तथा कर्मकाण्डों की निन्दा की गई है तथा ब्रह्म को एकमात्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। उसे निर्विकार, अद्वैत, एवं निरपेक्ष बताया गया है जो जगत से परे भी है तथा उसमें व्याप्त भी है। ब्रह्म का व्यक्ति के सारभूत तत्व 'आत्मा' से समीकरण स्थापित किया गया है। उपनिषदों के अनुसार आत्मसाक्षात्कार ही मोक्ष है, जो अज्ञान के नाश से सम्भव है। जगत का माया के रूप में चित्रण मिलता है। अब काया क्लेश एवं संन्यास मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक समझे गए। आरम्भ में वेदान्त का अर्थ उपनिषद था, यद्यपि कि अब इस शब्द का प्रयोग उस विशेष दर्शन के लिए होता है, जो उपनिषदों पर आधारित है। वेदान्त का शाब्दिक अर्थ वेदस्त्र अन्तः' अर्थात् वेदों का उपसंहार तथा लक्ष्य है। उपनिषदें वेदों के अंतिम अंश हैं। कालक्रम के अनुसार ये वैदिक काल के अन्त में आती है। चूँकि उपनिषदों में दर्शन की मौलिक समस्याओं पर गूढ़ एवं कठिन विचार–विमर्श होता है। इसलिए वे शिष्यों को उनके पाठयक्रम के प्रायः अन्त में पढ़ाई जाती थी। धार्मिक अनुष्ठान के रूप में जब हम वेद पाठ करते हैं तो उस पाठ की समाप्ति आम तौर पर उपनिषदों के पाठ से होती है। उपनिषदों के वेदान्त कहलाने का मुख्य कारण यह है कि वेद की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य और अभिप्राय उपनिषदों में ही मिलता है। उपनिषदों का विषय वेदान्त–विज्ञान है।[2] संहिताओं और ब्रह्मणों में जो सूक्तों और पूजा–पद्धतियों के ग्रन्थ है, वेद का कर्मकाण्ड भाग आता है, जबकि उपनिषदों में ज्ञान काण्ड भाग है।

उपनिषदों में हमें आध्यात्मिक जीवन का वर्णन मिलता है, जो भूत, वर्तमान, भविष्य में सदा एक सा है। परन्तु आध्यात्मिक जीवन का हमारा बोध वे प्रतीक जिनसे हम उसे व्यक्त करते हैं, समय के साथ बदलते रहते हैं। धर्मपरायण भारतीय विचारधारा की सभी शाखाएं वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार करती है, परन्तु वे उनकी व्याख्या में स्वतन्त्रता बरतती हैं। उनकी व्याख्या में यह विविधता इसलिए सम्भव है कि उपनिषदें किसी एक दार्शनिक अथवा एक ही परम्परा का अनुसरण करने वाले किसी एक दार्शनिक सम्प्रदाय के विचार नहीं है, ये ऐसे विचारकों के विचार हैं, जो दार्शनिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं में रूचि रखते थे।

*फ्लैट नंबर 203, सनशाईन कोर्ट, प्रज्ञ नारायण रोड़, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)*

ये मूलतः मानवता के लिए उद्‌भूत विचार थे। इसीलिए ये ऐसी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है, जो रूचि और महत्व की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की है। इस तरह इसके चिन्तन में कुछ तरलता है या व्यापकता है, जिसका उपयोग विभिन्न दार्शनिक मतों के विकास के लिए किया गया है। व्यंजनाओं और कल्पनाओं का जो भण्डार है उसमें विभिन्न विचारक उपने–अपने मत के निर्माण के लिए तत्व चुन लेते है। यह इनकी वैचारिक व्यापकता की ही परिणाम है। उपनिषदें वैदिक विचारों और प्रतीकों को विकसित करती है और जहाँ आवश्यकता होती है, वहाँ उन्हें नए अर्थ प्रदान कर देती है।[3] जिससे उनकी औपचारिकता दूर हो जाती है। उपनिषदों की शिक्षाओं के समर्थन में वेदों से प्रायः उद्धरण दिए जाते हैं।

'उपनिषदों के ऋषि जाति के नियमों से बंधे नहीं है। आत्मा की सर्वव्यापकता के सिद्धान्त को वे मानव जीवन की चरम सीमाओं तक फैला देते हैं। सत्यकाम जाबाल यद्यपि अपने पिता का नाम नहीं बता पाता है, फिर भी उसे आध्यात्मिक जीवन की दीक्षा दी जाती है। यह कथा इस बात का प्रमाण है कि उपनिषदों के रचयिता रीति–रिवाज के कड़े आदेशों से अधिक मान्यता उन दिव्य और आत्मिक नियमों को देते है, जो आज या कल के नहीं, बल्कि शाश्वत नियम हैं।[4] उपनिषदों में वेदों का उल्लेख सामान्य रूप से सम्मान के साथ किया गया है और उनका अध्ययन महत्वपूर्ण माना गया है। वेदों के गायत्री मंत्र जैसे कुछ मंत्र ध्यान का विषय है और उपनिषदों की शिक्षा के समर्थन में कई बार वेदों के मंत्र उद्धृत किये जाते हैं। उपनिषदें वेदों का उपयोग तो करती हैं किन्तु उनकी शिक्षा याज्ञवल्क्य, शाण्डिल जैसे गुरूओं के निजी अनुभव और साक्ष्य पर निर्भर है। वेदों की प्रमाणिकता बहुत हद तक उपनिषदों के उनके अन्तर्गत होने के कारण हैं।

औपनिषदिक संस्कृति मूलतः धर्म प्रधान संस्कृति थी। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इस पुरूषार्थ चतुष्ट्य की कल्पना ऋषियों ने मानव के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों में संतुलन स्थापित करने के लिए की थी। धर्म का लक्षण बताते हुए महर्षि कणाद ने कहा था कि, 'जिससे इस लोक में अभ्युदय (उत्कर्ष) और परलोक में निश्रेयस–मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है। यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः। अतः मनुष्य के अर्थ और काम यदि प्रवृति–निवृत्तिपरक धर्म के द्वारा मर्यादित हों, तो अंतिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है।

उपनिषद्‌वाङमय का परम लक्ष्य मोक्ष है, निःश्रेयस है। परन्तु ऋषि मनीषा ने भौतिक जीवन की भी उपेक्षा नहीं की है। मनुष्य इस सतत संसरणशील और परिवर्तनशील संसार में रहते हुए ही निःश्रेयस की प्राप्ति करता है। मानव शरीर उस अशरीरी अमृतमय आत्मा का अधिष्ठान है[5], इन्द्रियों तथा मन से समन्वित आत्मा 'भोक्ता' कहलाता है।[6] जब तक जीव इस शरीर के साथ अपने को अभिन्न समझता है, तब तक वह स्वयं को सुखी और दुःखी मानता है। वस्तुतः सुख और दुःख तो शरीर के धर्म हैं। शरीर मरणधर्मा है, क्योंकि यह मृत्यु के द्वारा गृहीत है।[7] अतः भौतिक जगत गौण होते हुए भी मानव जीवन में प्रमुख हो जाता है।

भौतिक सुखों के लिए इस वाङ्‌मय में 'प्रेयस्' शब्द उपलब्ध होता है। यह शब्द प्रिय+ईयसुन से निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है, जो अतिशय रूप से प्रिय हो। मनुष्य के लिए अतिशय रूप से क्या प्रिय होता है? प्रेयस् का स्वरूप क्या है? मनुष्य जीवन में गाय, अश्व, हिरण्य, हस्ति, दास, पत्नी, भूमि और घर इत्यादि ही प्रिय हैं। जीवन में इन्हीं सब के होने से मनुष्य को महिमा और यश की प्राप्ति होती है। बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित है कि सृष्टि के प्रारंभ में पुरूष 'एकाकी' था। इसीलिए वह रममाण नहीं हुआ। वह अकेले कैसे सृष्टि के भोगो को भोगता और उनमें रमण करता। फलस्वरूप उसने दूसरे की इच्छा की। एतदर्थ उसने अपने शरीर के दो टुकड़े किए। उसी से पति–पत्नी हुए। पति और पत्नी 'अर्धबृगल' (आधे दल) एतदर्थ हैं। अर्थात् जैसे साबुत चने के या सीप के दो आधे–आधे दल होते हैं, वैसे ही वे दोनों भी हैं। जैसे दोनों आधे–आधे दल मिलकर एक चना या सीपी बनते हैं, वैसे पुरुष स्त्री के साथ मिलने से ही पूर्ण होता है।[8] अतः ऐहिक सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए तथा इस लोक में रमण करने के लिए स्त्री की आवश्यकता सृष्टि के आरंभ में ही पुरुष ने अनुभव की थी। इससे यह ज्ञात होता है कि संसार में 'रमण' करने के कारण ही आदि पुरुष ने भोग्या स्त्री की संरचना की थी।

मनुष्य जीवन में ये सभी अतिशय प्रिय लगने वाले पदार्थ हैं। प्रिय लगने वाले और मन को आकर्षित करने वाले भोग्य विषय ही जीवन में 'काम्य' होते हैं। श्रेयस् मार्ग के पथिक नचिकेता को लुभाने के लिए जो भोग्यपदार्थ आचार्य यम ने प्रस्तुत किए थे, वे ही सांसारिक मनुष्य को सर्वतोमुखी अतीव अभीष्ट होते हैं। सर्वप्रथम तो मनुष्य अपने लिए ही दीर्घायुष्य की कामना करता है। उपनिषदों का तो उद्‌घोष ही है कि, 'मनुष्य को कर्म करते हुए सौ वर्षो तक जीने की कामना करनी चाहिए।[9]' ऐन्द्रिक सुख एवं रमण करने हेतु ही वह स्त्री की कामना करता है। पुत्र, पिता का प्रतिनिधि होता है। इतना ही नहीं, पिता ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है। मनुष्य अपनी वंशपरंपरा का वर्द्धन करने हेतु पुत्र और पौत्रों की भी कामना करता है। इसीलिए यमराज ने भी नचिकेता के मन को प्रलुब्ध करने के लिए दीर्घायु वाले बेटे–पोते माँगने को कहा। मानव–सभ्यता के आदिकाल से समाज पितृसतात्मक एवं पुरुषप्रधान रहा है। ऐसे समाज में सदैव पुत्र–कामना ही बलवती रही है। यमराज बेटे–पोतों के साथ बहुत से पशुओं यथा गो, हस्ति आदि को भी माँगने के लिए कहते हैं, क्योंकि तत्युगीन समाज में पशु ही धन होते थे। हाथी रखना समाज में वैभव और सामर्थ्य का प्रतीक माना जाता था। यातायात और व्यवसाय के लिए तीव्रगामी अश्वों की अपेक्षा स्वाभाविक थी। भूमिपति होना प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता था। अतः बेटे–पोते, पशुधन, हाथी–घोडे, हिरण्य, महदायतन भूमि और यथेच्छ आय ऐसे प्रलोभन हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिए किसी भी सांसारिक मनुष्य का मन डाँवाडोल होकर भटक जाएगा।[10] जीवन–पर्यन्त मनुष्य इन्हीं सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। मर्त्यलोक में तथाकथित महिमा प्रदान करनेवाली ये कामनायें मनुष्य को अतिशय प्रिय लगती हैं। कुछ कामनायें मर्त्यलोक में दुर्लभ होती हैं। यमाचार्य इन्हीं दुर्लभ कामनाओं का प्रलोभन देते हुए कहते हैं। कि, 'हे नचिकेता स्वार्गिक रथों और वाद्ययन्त्रों के सहित स्वर्ग की अप्सराओं को, तुम इच्छानुसार माँग लो। ये सभी अप्सरायें जब तक तुम चाहोगे, तुम्हारी सेवा करेंगी।[11] अतः अपरिमित धन, चिरायु, महत्

आयतनवाली भूमि ये सभी प्रियरूप वाली प्रिय कामनायें हैं।[12]

पुरुष भी काममय है।[13] मन में काम ऐसे संश्लिष्ट रहता है, जैसे पुष्प में गंध रहती है। मनस्थ काम ही सृष्टि का आदि कारण था।[14] संसरण का हेतु भी काम है। क्योंकि मन का 'रेतस्' काम है।[15] यही काम मनुष्य के पुनर्जन्म का हेतु है।[16] कामना ही 'एषणा' है। एषणा शब्द इष् धातु में णिच् और युच् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– इच्छा, अभिलाषा। उपनिषदों में एषणा भी तीन प्रकार की वर्णित की गई है– (1) पुत्रैषणा, (2) वित्तैषणना (3) लोकैषणा। पुत्रैषणा ही वितैषणा है। वितैषणा ही लोकैषणा है। पुत्रैषणा–वितषैणा और वितषैणा–लोकैषणा का जोड़ा मूलतः एषणा ही है।

***या ह्येव पुत्रैषणा सा वितैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः।***[17]

अर्थात् संतान की कामना 'पुत्रैषणा' है। समाज में रहते हुए मनुष्य धन–वैभव और यश की कामना करता है, वही 'वितैषणा' है। धन से मनुष्य समाज में प्रतिष्ठित होकर यश की प्राप्ति करता है। जैसे राजा जानश्रुति पौत्रायण श्रद्धापूर्वक बहुत दान देते थे। उनके यहाँ खूब अन्न पकता था। उन्होंने सर्वत्र धर्मशालाएँ (आवास) बनवा दी थीं; जिससे भिन्न–भिन्न स्थानों से आकर अतिथि ठहरें और निःशुल्क भोजन ग्रहण करें।' फलस्वरूप राजा का यश सर्वत्र फैल गया। इहलोक में यश–प्राप्ति के साथ–साथ मनुष्य को पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्गादि की प्राप्ति होती थी, ऐसा माना जाता था। अतः मृत्युलोक से अन्य जो लोक हैं, उनकी प्राप्ति की कामना ही 'लोकैषणा' है।

अतः उपनिषदों में प्राप्त सन्दर्भो के विवेचनोपरान्त यह कहा जा सकता है कि उपनिषदयुग में धार्मिक स्थिति अपनी पूर्ववर्ती धार्मिक स्थिति से परिवर्तित हो रही थी। यह परिवर्तन तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं से भी प्रभावित था। आरम्भिक देवी–देवताओं कि स्थिति में परिवर्तन हुआ और कर्मकाण्डों के स्थान पर चरम मानवतावादी विचारधारा का प्रफुस्टन हुआ, और अपने स्वरूप में यह विचारधारा अत्यन्त व्यापक थी, यह इसकी व्यापकता का ही प्रभाव था कि समस्त भारतीय धार्मिक विचाारधाराओं के स्रोत के रूप में इसे स्वीकारा जाता है।

***सन्दर्भ :***


*(1) डॉ0 राधाकृष्णनन् उपनिषदों का सन्देश, पृ0 21.*
***(2)*** *मु0 उप0 3.2.6, श्वे0 उप0 6.22.*
***(3)*** *डॉ0 राधाकृष्णनन् उपनिषदों का सन्देश, पृ0 सं0 24.*
***(4)*** *डॉ0 राधाकृष्णनन्, वही, पृ0 सं0 51.*
***(5)*** *छां. उप., 8.12.1.*
***(6)*** *कठ. उप., 34.*
***(7)*** *छां. उप., 8.12.1.*
***(8)*** *बृह. उप., 1.4.3.*
***(9)*** *ईशा. उप., 2.*
***(10)*** *कठ. उप., 1.1.23.*
***(11)*** *वही, 1.1.25.*
***(12)*** *स त्वं प्रियान्प्रियरुपाँश्च कामान्, वही, 1.2.3.*
***(13)*** *य एवायं काममयः पुरुषः। बृह. उप., 3.9.11.*
***(14)*** *सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। तै. उप., 2.6.*
***(15)*** *अथर्व., 19.5.2.1*
***(16)*** *कामान्यः कामयते मन्यमानः से कामभिर्जायते तत्र तत्र। मु. 3.2.2.*
***(17)*** *बृह उप., 4.4.22.*


❁ ❁


**UGC -**

**APPROVED - JOURNAL**

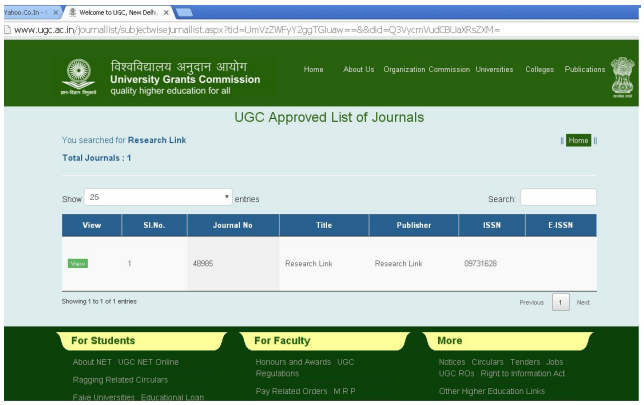


**UGC Journal Details**

| | |
|---|---|
| **Name of the Journal :** | Research Link |
| **ISSN Number :** | 09731628 |
| **e-ISSN Number :** | |
| **Source:** | UNIV |
| **Subject:** | Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all) |
| **Publisher:** | Research Link |
| **Country of Publication:** | India |
| **Broad Subject Category:** | Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science |

Print

'रिसर्च लिंक' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है-

**बैंक :** स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया

**ब्रांच :** ओल्ड पलासिया, इन्दौर,

**कोड - SBIN 000 3432**

**खाते का नाम : रिसर्च लिंक,**

**खाता नंबर - 63025612815**

भुगतान की मूल रसीद, शोध-पत्र एवं सीडी के साथ कार्यालयीन पते पर भेजना अनिवार्य है।

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : History
Research Link - 165, Vol - XVI (10), December - 2017, Page No. 124-125
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

# दन्तेवाड़ा जिले का ऐतिहासिक परिदृश्य

***प्रस्तुत शोधपत्र, दन्तेवाड़ा जिले के ऐतिहासिक परिदृश्य पर आधारित है। दन्तेवाड़ा में प्राप्त 1224 ई. के स्तम्भलेख में राजभूषण का उल्लेख मिलता है। राजभूषण एक प्रतापी नरेश या राजा की संतान नहीं थी। राजभूषण की मृत्यु के उपरांत चक्रकोट की जनता ने राजा की बहन मासक देवी को रानी बनाया, चक्रकोट में अव्यवस्था व्याप्त थी। प्रजा और राजा के मध्य में सम्बंध होने चाहिए, वे नहीं रहे, भ्रष्टाचार अपनी चरमसीमा पर था, धर्म का नाश हो रहा था। चक्रकोट की इन्हीं परिस्थितियों में मासक देवी रानी बनी थी। मासक देवी में सुन्दरता के साथ ही अद्‌भूत साहस और प्रबल इच्छा शक्ति थी। इसी तरह यहाँ के राजवंशों तथा दन्तेवाड़ा के इतिहास की परतें खुलनी अभी शेष हैं तथा यदि यहाँ के दृश्य स्थलों के अतिरिक्त पुरातात्विक स्थलों की खुदाई की जाएगी तो यहाँ के इतिहास की जानकारी हमें पूर्ण रुप से प्राप्त हो सकती है।***

**डॉ.शिखा सरकार**

छत्तीसगढ़ राज्य के निर्माण के बाद से छत्तीसगढ़ी चेतना के स्वर का जागृत होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि पृथक राज्य के रूप में अस्तित्वमान होने के कारण इस राज्य के लोगों में थी अपनी अस्मिता अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं पुरातात्विक चेतना के प्रति आकर्षण तथा विश्व मानचित्र पर अपनी विरासत से दुनिया को पहचान कराने की ललक पैदा हुई, इसी दिशा में दन्तेवाड़ा जिले के परिप्रेक्ष्य में दन्तेवाड़ा के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व की पहचान के खोज की कड़ी में यह मेरा प्रयास है।

आजादी के पश्चात् प्राथमिकता के आधार पर जो कार्य करके होते है। उनमें से एक है राष्ट्र के इतिहास का नये सिरे से लेखन, इतिहास, राष्ट्र की स्मृति कोष हैं। इस स्मृति कोष में प्रेरणादायिनी जीवनियाँ भी संग्रहित हैं, जो राष्ट्र के नागरिकों में प्रेरणा संचार करती है। क्षेत्रीय इतिहास की जानकारी राष्ट्रीय चेतना की आधार शिला होती है।

दन्तेवाड़ा जिला पुराने बस्तर जिले को विभाजित कर उसके दक्षिणी भू–भाग के रूप अस्तित्व में आया। अपनी सांस्कृतिक, पुरातात्विक तथा भौगोलिक विशिष्टताओं के कारण यह जिला सभी के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं। इतिहास के संदर्भ में बस्तर को देखें तो इसकी प्रसिद्धि प्राचीन काल से ही है। इस विशाल और विस्तृत वनाच्छादित भू–भाग को महर्षि वाल्मिकी अपने कालाजयी महाकाव्य रामायण में दण्डकवन और दण्डकारण्य कहा है। महाभारत काल एवं गुप्त युग में यह आरण्यक अंचल अपने विशाल सघन, मनोरम, वनों के कारण महाकान्तार नाम से जाना जाता था, तब बस्तर एक आटविक राज्य था, संस्कृत में आरबी शब्द का अर्थ है, जंगल। अपनी अकूट वन–सम्पदा के करण बस्तर एक आरविक राज्य था, एक अन्य (पौराणिक) सन्दर्भ के अनुसार बस्तर का विशाल भू–भाग, जो गोदावरी तट पर्यन्त फैला है, प्राचीन दण्डक वन है, हरिवंश पुराण के अनुसार वैवस्वत मनु के नौ परम प्रतापी पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम इस्वाकु था, इस्वाकु के एक पुत्र का नाम दण्डक था, दण्डक ने बस्तर में अपना राज्य स्थापित किया, दण्डक के नाम से ही बस्तर के इस विस्तृत वनाच्छादित भू–भाग का नाम (दण्डकारण्य) पड़ा दण्डक राज्य अत्यन्त समृद्ध था, किन्तु शुक्राचार्य के श्राप के कारण दण्डक का राज्य भस्मीभूत हो गया और जंगल में परिवर्तित हो गया, यह मूलतः एक आदिवासी अंचल है। प्रकृति की विशाल सम्पत्ति के स्वामी होने के बावजूद यहाँ के आदिवासी आज भी निरक्षर तथा निर्वसन जीवनयापन कर रहे हैं। अज्ञानता के कारण ठगे गए हैं। इनके इतिहास को दफना दिया गया है, इसलिए ग्रिग्सन (1938) में इसे भारतीय इतिहास का बैकवाटर कहा था। इस काल की कोई खास जानकारी तथा पुरातात्विक अवशेष प्राप्त न होने के कारण बस्तर तथा इसके अन्तर्गत आने वाले दन्तेवाड़ा क्षेत्र के बारे में कोई अन्य जानकारी हमें नहीं मिलती है।

दन्तेवाड़ा के ऐतिहासिक महत्व की पहली जानकारी नलयुग मे मिलती है, जिनका शासन काल 400 ई. सन के आस–पास है तथा इन्हीं के समय बस्तर में मूर्ति कला के निर्माण के कार्य के संकेत हमें प्राप्त होते हैं।

जगन्नाथपुरी के गंगवंशी राजा के एक पुत्र ने बारसुर में अपनी राजधानी स्थापित की कुछ दिनों के लिए वे अपनी राजधानी दन्तेवाड़ा भी ले आए। इसका सबसे प्रथम राज इन्द्रवर्मन कहा जाता है, जिसका शासन 498 ई. के आसपास से प्रारंभ होता है। इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि बालसूय के नाम पर बारसूर नाम प्रसिद्ध हुआ होगा। इस गंगावंशी राजा ने बारसूर में अनेक मंदिरों एवं तालाबों का निर्माण कराया तथा दन्तेवाड़ा में

*विभागाध्यक्ष ( इतिहास विभाग ), शासकीय दन्तेश्वरी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दन्तेवाड़ा ( छत्तीसगढ़ )*

इन्होने (दन्तेश्वरी) का मंदिर भी बनवाया था। गंगालूर नामक गाँव इस क्षेत्र में गंगवेशी राज्य के प्रमाण की पुष्ट करता है। दन्तेवाड़ा मंदिर में स्थापित गरूड़ स्तंभ पेदम्मागुड़ी की दुर्गा मूर्ति (दन्तेश्वरी) तथा माणिकेश्वरी की कलात्मक मूर्तियाँ गंगवंश के मूर्तिकला के इतिहास को दर्शाता है। दन्तेवाड़ा जिले के बारसूर नामक स्थान को नागवंशी नरेशों के द्वारा अपनी प्रथम राजधानी बनने का सुअवसर मिला तथा 1023 में नृपतिभूषण नामक नरेश ने इसे अपनी राजधानी बनाई। छिन्दक नाग राजा का 1023 ई. में प्राप्त शिलालेख एर्राकोट से मिला है, जिसमें नृपति भूषण तथा क्षितिभूषण नाम का उल्लेख है। ऐसा माना जाता है कि ये नाग शासक आधुनिक गोडों के ही पूर्वज थे। इतिहासकारों ने इसका समानता के लिए नागवंशी का वंशक्रमानुसार तीन भागों मे विभक्त किया है:

(1) जिसके मुकुट पर सर्पछात्र तथा व्याघ्र शासक था।

(2) जिसका प्रतीक धर्नुव्याय था।

(3) जिसमें दोनों के अभिलक्षण मिलते थे।

दन्तेवाड़ा में प्राप्त 1224 ई. के स्तम्भलेख में राजभूषण का उल्लेख मिलता है, राजभूषण एक प्रतापी नरेश या राजा की संतान नहीं थी। राजभूषण की मृत्यु के उपरान्त चक्रकोट की जनता ने राजा की बहन मासक देवी को रानी बनाया, चक्रकोट में अव्यवस्था व्याप्त थी। प्रजा और राजा के मध्य में संबंध होने चाहिए, वे नहीं रहे, भ्रष्टाचार अपनी चरमसीमा पर था, धर्म का नाश हो रहा था। चक्रकोट की इन्हीं परिस्थितियों में मासक देवी रानी बनी थी। मासक देवी में सुन्दरता के साथ ही अद्भूत साहस और प्रबल इच्छा शक्ति थी। उनमें परिस्थितियों को समझने व उन्हें सुलझाने के असाधारण गुण विद्यमान थे। वह घोड़े पर सवार होकर चक्रकोर राज्य का दौरा करती थी। मासक देवी ने नारी जागरण, प्रजा–प्रेम सेवाभाव त्याग आदि मानवी गुणों के विकास का अथक प्रयास किया था, नैतिकता का निर्वाह करते हुए शासन का संचालन किया था। अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धि, विदुषी, बहुपक्षीय स्वभाव अपूर्वविचार शक्ति के कारण वह बस्तर के इतिहास में अमर है।

सन् 1313 में (चालुक्य) काकतीय राजा प्रताप रूपदेव का अनुज अन्नमदेव ने नागवंशीय हरिशचंद देव को पराजित करने पश्चात् बैशाख शुक्ल अष्टमी को सन् 1314 ई. सिहांसन पर बैठा। बारसूर से मूर्तियाँ लाकर अपनी ईश्वर देवी दन्तेश्वरी की मंदिर शंकनी डंकनी के संगम पर बनवाया। बाद में उसने चक्रकोर पर विजय पाडू तथा कई स्थानों पर राजधानी बदलते हुए जगदलपुर में स्थायी मुख्यालय स्थापित किया, यह राजपरिवार वर्तमान तक है। यद्यपि भारत वर्ष की आजादी के बाद इस देशी रियासत का भारत संघ में विलय हो गया।

बस्तर के राजवंशों के साथ दन्तेवाड़ा जिले में स्थापित विभिन्न जमीदारियों की चर्चा भी यहाँ अपेक्षित होगी।

दन्तेवाड़ा जिले के सूदूर दक्षिण में भेजी राज्य था, जिसके जमीदार कोरकोण्ड वंश के थे। पं. केदारनाथ ठाकुर के विवरण अनुसार यह छह भागों में विभाजित था, जिस पर इस वंश के छह पुत्र शासन करते थे– भेजी, चिन्तलनार, कोतापाल, सुकमा, रेकापल्ली तथा कोत्तागुड़म।

सुकमा प्राचीन बस्तर की एक दक्षिण–पूर्ण की जमीदारी थी, यहाँ के शासक क्षत्रिय थे, जबकि अन्य जमीदारियों के शासक गोड़ थे। सुकमा के जमीदार चालुक्य वंशी क्षत्रिय थे तथा बस्तर के राजवंश के साथ इनका वैवाहिक संबंध था। सुकमा जमीदार के एक खास बात यह थी कि यहाँ के जमीदारीं का नाम तेरहवीं सदी से लेकर ब्रिटिश युग तक पिता रंगराज तो पुत्र रामराज ही कहा जाता था।

भोपालपट्टनम की जमीदारी अन्यन्त प्राचीन थी तथा यहाँ के जमीदार गोड़ थे। केदारनाथ ठाकुर इन्हें भोई जाति के नाम से जानते हैं। चालुक्य वंश की स्थापना में इस जमीदारी ने अन्नमदेव की सहायता की थी, ऐसा माना जाता है। यह जमीदारी भारतीय स्वंतत्रता संग्राम की दृष्टि से थी, महत्वपूर्ण हैं 1857 यदोराम नामक एक युवक ने अंग्रेजों के विरूद्ध झण्डा बुलन्द किया था। भोपालपट्टनम के निकट ही भद्रकाली देवी का एक प्राचीन मंदिर भी स्थित है।

कुटरू ब्रिटिश कालीन सबसे बड़ी जमीदारी बताई जाती है। यहाँ के जमीदार अपने को नागपुर के गोड़ राजाओं के वंशज मानते हैं। ये शूरवीर थे तथा बस्तर भूषण में इसे कट्टर लडाकू कहा गया है। यहाँ के शासक को अंग्रेजों द्वारा सरकार बहादुर की उपाधि से विभूषित किया गया था।

भैरमगढ़ घाटी जमीदारी थी तथा कुटरू के अधीन थी। इसकी खास बात यह थी कि ब्रिटिश साम्राज्य युकीन बस्तर की यह एक मात्र हल्बा जमीदारी थी। बाद में यह कुटरू जमीदारी में मिला ली गई थी।

इस जमीदारियों के पास कचहरी के सिवाय कोई दर्शनीय भवन नहीं था तथा जमीदारी के अवशेष के रूप में कुछ तालाब तथा मंदिर आज भी इस जमीदारी के प्रतीक के रूप में अवस्थित है।

यहाँ के राजवंशों तथा दन्तेवाड़ा के इतिहास की परतें खुलनी अभी शेष हैं तथा यदि यहाँ के दृश्य स्थलों के अतिरिक्त पुरातात्विक स्थलों की खुदाई की जाएगी तो यहाँ के इतिहास की जानकारी हमें पूर्ण रूप से प्राप्त होगी। इसी सन्दर्भ में टीम आगामी दिनों में जिसके पुरातात्विक महत्व के अनेक स्थलों का भ्रमण करेगी, जिसमें अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां हमें प्राप्त होगी।

***संदर्भ :***


*(1) जगदलपुर, लाल : बस्तर इतिहास और संस्कृति।*

***(2)*** *गुप्ता, मदनलाल : छत्तीसगढ़ दिग्दर्शिका।*

***(3)*** *शुक्ला, हीरालाल : बस्तर का मुक्ति संग्राम।*

***(4)*** *ठाकुर, केदारनाथ : बस्तर भूषण।*

***(5)*** *बेहार, डॉ. रामकुमार : मध्यप्रदेश का पुरातत्व (संदर्भ ग्रन्थ)।*

***(6)*** *बेहार, डॉ. रामकुमार : बस्तर एक अध्य तत्व – 1995 ई.।*

***(7)*** *डिब्रेश – छत्तीसगढ़ फयूडेटरी स्टेटस गयेरियर (1904) बस्तर भूषण (1908)।*


❁ ❁